शिवशतनामस्तोत्र

श्रीरामचरितमानस में यह कथा आयी है कि देवर्षि नारदजी को काम पर विजय करने से गर्व हो गया था और वे शंकरजी को इसलिये हेय समझने लगे कि उन्होंने कामदेव को क्रोध से जला दिया, इसलिये वे क्रोधी तो हैं ही, किंतु मैं काम और क्रोध दोनों से ऊपर उठा हुआ हूँ। पर मूल बात यह थी कि जहाँ पर नारदजी ने तपस्या की थी, शंकरजी ने ही उस तपःस्थली को कामप्रभाव से शून्य होने का वर दे दिया था[1] और नारदजी ने जब शंकरजी से यह बात कह डाली, तब भगवान् शंकर ने उन्हें इस बात को विष्णुभगवान् से कहने से रोका। इस पर नारदजी ने सोचा कि ये मेरे महत्त्व को कम करना चाहते हैं। अतः यह बात उन्होंने भगवान् विष्णु से भी कह डाली। भगवान् विष्णु ने उनके कल्याण के लिये अपनी माया से श्रीमतीपुरी नाम की एक नगरी खड़ी कर दी, जहाँ विश्वमोहिनी के आकर्षण में नारदजी भी स्वयंवर में पधारे। पर साक्षात् भगवान् विष्णु ने वहाँ जाकर विश्वमोहिनी से विवाह कर लिया। यह सब देखकर नारदजी को बड़ा क्रोध हुआ। काम के वश में तो वे पहले ही हो चुके थे। क्रुद्ध होकर उन्होंने भगवान् विष्णु को अनेक अपशब्द कहे और स्त्री-वियोग में विक्षप्त-सा होने का भी शाप दे दिया। तब भगवान् ने अपनी माया दूर कर दी और विश्वमोहिनी के साथ लक्ष्मी भी लुप्त हो गयीं तथा नारदजी की बुद्धि भी शुद्ध और शान्त हो गयी। उन्हें सारी बीती बातें ध्यान में आ गयीं। वे अत्यन्त सभीत होकर भगवान् विष्णु के चरणों में गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे कि भगवन्! मेरा शाप मिथ्या हो जाय और मेरे पापों की सीमा नहीं रही, क्योंकि मैंने आपको अनेक दुर्वचन कहे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला।।
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।। (मानस 1/137/2)

इस पर भगवान् विष्णु ने कहा कि शिवजी मेरे सर्वाधिक प्रिय हैं, वे जिसपर कृपा नहीं करते उसे मेरी भक्ति प्राप्त नहीं होती, अतः आप शिवशतनाम का जप कीजिये, इससे आपके सब दोष-पाप मिट जायँगे और पूर्ण ज्ञान-वैराग्य तथा भक्ति की राशि सदा के लिये आपके हृदय में स्थित हो जायगी।

---

1. शिवपुराण में कहा गया है कि महादेवजी की कृपा से ही नारदजी पर कामदेव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहले उसी आश्रम (तपःस्थली) में कामशत्रु भगवान् शिव ने उत्तम तपस्या की थी और वहीं उन्होंने मुनियों की तपस्या का नाश करनेवाले कामदेव को शीघ्र ही भस्म कर डाला था। उस समय रति ने कामदेव को पुनः जीवित करने के लिये देवताओं से प्रार्थना की। तब देवताओं ने समस्त लोकों का कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर से याचना की। उनके याचना करने पर वे बोले-'देवताओं कुछ समय व्यतीत होने के बाद कामदेव जीवित तो हो जायँगे, परन्तु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा। अमरगण! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतक की भूमि को नेत्र से देख पाते हैं; वहाँतक कामदेव के बाणों का प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है।'

ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि।।
अत्रैव शम्भुनाऽकारि सुतपश्च स्मरारिणा। अत्रैव दग्धस्ते नाशु कामो मुनितपोपहः।।
कामजीवनहेतोर्हि रत्या संप्रार्थितैस्सुरैः। सम्प्रार्थित उवाचेदं शंकरो लोकशंकरः।।
कंचित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः। परंत्विह स्मरोपायश्चरिष्यति न कश्चन।।
इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमरास्सदा। कामबाणप्रभावोत्र न चलिष्यत्यसंशयम्।।
(शिवपुराण रुद्रसंहिता सृष्टिखण्ड 2/17-21)

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा।।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें।।
जेही पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।

(मानस 1/137/3-4)

यह प्रसंग मानस तथा शिवपुराण के रुद्रसंहिता के सृष्टि-खण्ड में प्रायः यथावत् आया है। इस पर प्रायः लोग शङ्का करते हैं कि वह शिवशतनाम कौन-सा है, जिसका नारदजी ने जप किया, जिससे उन्हें परम कल्याणमयी शान्ति की प्राप्ति हुई? यहाँ पाठकों के लाभार्थ यह शिवशतनामस्तोत्र विनियोग आदि के साथ मूलरूप में दिया जा रहा है, न्यास-ध्यानपूर्वक इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये। इस स्तोत्र का उपदेश साक्षात् नारायण ने पार्वतीजी को भी दिया था, जिससे उन्हें भगवान् शंकर पतिरूप में प्राप्त हुए और वे उनकी साक्षात् अर्धाङ्गिनी बन गयीं।

पार्वत्युवाच

शरीरार्धमहं शम्भोर्येन प्राप्स्यामि केशव।
तदिदानीं समाचक्ष्व स्तोत्रं शीघ्रफलप्रदम्।।

नारायण उवाच

अस्ति गुह्यतमं गौरि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
शम्भोरहं प्रवक्ष्यामि पठतां शीघ्रकामदम्।।

विनियोग

'ॐ अस्य श्रीशिवाष्टोत्तरशतदिव्यनामामृतस्तोत्रमालामन्त्रस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीसदाशिवः परमात्मा देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनयोगः।'

न्यास

ॐ यज्जाग्रत इत्यादिशिवसंकल्पांते ॐ हृदयाय नमः। ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादि-पुरुषसूक्तांते ॐ शिरसे स्वाहा। ॐ अद्भ्यः संभृत इत्याद्युत्तरनारायणांते शिखायै वषट्। ॐ आशुः शिशान इत्यप्रतिरथांते कवचाय हुम्। ॐ विभ्राड्बृहदित्यादिसूक्तांते नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव इत्यादिशतरुद्रियांते[1] अस्त्राय फट्।

---

1. शतरुद्रिसंज्ञा शिक्षायाम् - **षटषष्टिर्नीलसूक्तं च पुनः षोडशमेव च।। एषते द्वे नमस्ते द्वे नतंब्विद्वयमेवच। मीढुष्टमेति चत्वारि एतच्च शतरुद्रियमिति।।**

अर्थात्-यजुर्वेद संहिता (वाजसनेयी) के 16हवें अध्याय के 66 मन्त्र, तीसरे अध्याय के 56 से 63 (अर्थात् 8) मन्त्र, पुनः 16हवें अध्याय के शुरू के 16 मन्त्र, पुनः तीसरे अध्याय के 57 एवं 58 (दो) मन्त्र, पुनः 16हवें अध्याय के शुरू के दो मन्त्र, 17 वें अध्याय के 31 एवं 32 (दो) मन्त्र तथा 16 वें अध्याय के 51-54 (चार) मन्त्रों के क्रमशः पाठ को शतरुद्रिय कहा जाता है।

कुछ विद्वान् शतरुद्रिय की उपर्युक्त व्याख्या को स्वीकार नहीं करते। परन्तु हम ऊपर की व्याख्या को ही स्वीकार कर चलेंगे क्योंकि उपर्युक्त व्याख्या में अन्य सभी व्याख्यायें अन्तर्निहित हैं।

न्यास का विस्तार इस प्रकार है –

यज्जाग्रत इति षडर्चस्य शिवसंकल्प ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः मनो देवता हृदयन्यासे विनियोगः।

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्त ꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद 34/1-6)

इति हृदाय नमः।

सहस्रशीर्षेति षोडशर्चस्य[1] पुरुषसूक्तस्य नारायण ऋषिः आद्यानां पंचदशानामनुष्टुप् छन्दः यज्ञेन यज्ञमित्यस्य त्रिष्टुप् छंदः जगद्बीजं पुरुषो देवता शिरोन्यासे विनियोगः।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।
पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।

1. यों तो पुरुषसूक्त में कुल 22 ऋचायें हैं, परन्तु सभी प्रकार के कर्मकाण्डों में 16 ऋचाओं से ही काम चल जाता है। अतः यहाँ पर 16 ऋचायें ही दी जा रही हैं। पुनः शिखान्यास में बाकी 6 ऋचायें प्रयुक्त होंगी। उन्हें उत्तरनारायणसूक्त भी कहते हैं।

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

(यजुर्वेद 31/1-16)

इति शिरसे स्वाहा।

अद्भ्यः संभृत इति षड् ऋचस्योत्तरनारायणस्य नारायण ऋषिः आद्यानां तिसृणां त्रिष्टुप् छंदश्चतुर्थपञ्चमयोरनुष्टुप् छंदः आदित्यो देवता शिखान्यासे विनियोगः।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्ततात्रे।

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे।।
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण।। (यजुर्वेद 31/17-22)

इति शिखायै वषट्।

आशुः शिशान इति सप्तदशानामप्रतिरथ ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः इन्द्रो देवता कवचन्यासे विनियोगः।।

ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत् साकमिन्द्रः।।
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा।।
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता।।
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ2 अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्।।
बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्।।
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमꣳ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनु सꣳ रभध्वम्।।
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु।।
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्।।
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।।
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः।।
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ2 उ देवा अवता हवेषु।।
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्।।
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व माऽमीषां कं चनोच्छिषः।।
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ।।
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना।
तां गूहत तमसाऽपव्रतेन यथाऽमी अन्यो अन्यं न जानन्।।
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु।।
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु।।

(यजुर्वेद 17/33-49)

इति कवचाय हुम्।

विभ्राडिति सप्तदशानां विभ्राट् ऋषिर्जगती छन्दः सूर्यो देवता नेत्रन्यासे विनियोगः।

ॐ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति।।
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।।
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ2 अनु। त्वं वरुण पश्यसि।।
दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे।।
तं प्रत्नथा ऽयं वेनश्चित्रं देवानाम्।। (यजुर्वेद 33/30-33)
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे।।

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपाꣳ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।।
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

(यजुर्वेद 7/11½, 15½, 42)

आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा।।
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे।।
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्।।
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै।।
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति।।
बणमहाँ2 असि सूर्य बडादित्य महाँ2 असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ2 असि।।
बट् सूर्य श्रवसा महाँ2 असि सत्रा देव महाँ2 असि।
महना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्।।
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम।।
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

(यजुर्वेद 33/34-43)

इति नेत्रत्रयाय वौषट।

अस्य शतरुद्रियस्याघोर ऋषिः। रुद्रो देवता नमस्तऽ इति गायत्री छन्दो यात इति तिसृणामनुष्टुप् छन्दोऽअध्यवोचदिति तिसृणांपङ्क्तिश्छन्दो नमोस्त्वित्यादि सप्तानामनुष्टुप् छन्दो मान इति द्वयोः कुत्स ऋषिर्जगतीच्छन्द एकरुद्रो देवता नमोहिरण्यबाहव इत्यादीनि यजूꣳषि एकरुद्रो देवता द्रापेऽअन्धसऽइत्युपरिष्टाद्बृहती छन्द इमारुद्रायेति जगतीछन्दो यात इत्यनुष्टुप् छन्दः परिणोमीढुष्टम इति त्रिष्टुप् छन्दो बिकिरिद्रविलोहित सहस्राणिसहस्रश

इत्यनुष्टुप् छन्दोऽअसंख्यातेत्यादि दशानामनुष्टुप्छन्दो बहुरुद्रो देवता नमोऽस्त्वित्यादि त्रीणि यजूꣳषि बहुरुद्रदैवत्यानि वयꣳसोमेति गायत्रीछन्द एषते इति यजुरवरुद्रमिति पङ्क्तिश्छंदो भेषजमिति ककुप् छन्दस्त्र्यम्बकमिति द्वे अनुष्टुभावेतत्त इत्यास्तार पङ्क्तिश्छन्दस्त्र्यायुषमित्युष्णिक् छन्दः। शिवोनामेति यजुर्नतँविदेति द्वे त्रिष्टुभौ अस्त्रन्यासे विनियोगः।।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्।।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत्।।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव।।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेडईमहे।।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः।।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः।।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप।।

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ2 उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः।।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज।।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम्।।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव।।

नमस्त आयुधायानाताताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने।।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।।

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः।।

नमो बभ्लुशाय व्याधिने ऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः।।

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः।।

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः।।

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः।।

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः।।

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः।।

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः।।

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।।

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ।।

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ।।

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रूद्राय च नमः शर्वाय च

पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ।।

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ।।

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ।।

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ।।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ।।

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ।।

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चा शुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ।।

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ।।

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ।।

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ।।

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ।।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ।।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ।।

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ।।

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ।।

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ।।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ।।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किंचनाममत् ।।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ।।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ।।

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः। अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ।।

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ।।

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ।।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि।।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

अस्मिन् महत्यर्णवे ऽन्तरिक्षे भवा अधि। तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

य एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।। (यजुर्वेद 16/1-66)

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।।

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः।।

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात्।।

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै।।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।।

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि।।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।।

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः। नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।। (यजुर्वेद 3/56-63)

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ।।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ।।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ।।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ।।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ।।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ।।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ।।

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ2 उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ।।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ।।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ।।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ।।

नमस्त आयुधायानाततताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ।।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ।। (यजुर्वेद 16/1-16)

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः।।

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ।। (यजुर्वेद 3/57-58)

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।। (यजुर्वेद 16/1-2)

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।।

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः। तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा।। (यजुर्वेद 17/31-32)

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ।।

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः।।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ।।
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।। (यजुर्वेद 16/51-54)

इत्यस्त्राय फट्।

उपर्युक्त रीति से न्यास करने के उपरान्त हृदय में भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिये। ध्यान का मन्त्र इस प्रकार है-

ध्यान

धवलवपुषमिन्दोर्मण्डले संनिविष्टं भुजगवलयहारं भस्मदिग्धाङ्गमीशम्।
हरिणपरशुपाणिं चारुचन्द्रार्धमौलिं हृदयकमलमध्ये संततं चिन्तयामि।।

अर्थात्-'चन्द्रमण्डल में शिवजी विराजमान हैं, उनका गौर शरीर है, सर्प का ही कंगन तथा सर्प का ही हार पहने हुए हैं तथा शरीर में भस्म लगाये हुए हैं, उनके हाथों में मृगी-मुद्रा एवं परशु है और अर्धचन्द्र सिर पर विराजमान है। मैं उन भगवान् शंकर का हृदय में अहर्निश चिन्तन करता हूँ।'

स्तोत्र

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः।।
शंकरः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः।।
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः।
उग्रः कपालिः कामारिरन्धकासुरसूदनः।।
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः।।
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः।।
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः।।
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः।।
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः।।
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः।
मृत्युंजयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः।।
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः।।
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः।
शाश्वतः खण्डपरशुरजपाशविमोचकः।।
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययः प्रभुः।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः।।
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः।
एतदष्टोत्तरशतनाम्नामाम्नायेन सम्मितम्।
विष्णुना कथितं पूर्वं पार्वत्या इष्टसिद्धये।।

शंकरस्य प्रिया गौरी जपित्वा त्रैकालमन्वहम्।
नोदिता पद्मनाभेन वर्षमेकं प्रयत्नतः।।
अवाप सा शरीरार्धं प्रसादाच्छूलधारिणः।
यस्त्रिसंध्यं पठेच्छम्भोर्नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।।
शतरुद्रित्रिरावृत्त्या यत्फलं प्राप्यते नरैः।
तत्फलं प्राप्नुयादेतदेकवृत्त्या जपन्नरः।।
बिल्वपत्रैः प्रशस्तैर्वा पुष्पैश्च तुलसीदलैः।
तिलाक्षतैर्यजेद् यस्तु जीवन्मुक्तो न संशयः।।
नाम्नामेषां पशुपतेरेकमेवापवर्गदम्।
अन्येषां चावशिष्टानां फलं वक्तुं न शक्यते।।

इति श्रीशिवरहस्ये गौरीनारायणसंवादे शिवाष्टोत्तरशतदिव्यनामामृतस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार 108 नाम, जो वेद के तुल्य हैं, श्रीविष्णु ने पहले इष्ट-सिद्धि-हेतु माता पार्वतीजी को बतलाये थे। शंकरप्रिया भगवती गौरी ने भगवान् पद्मनाभ की प्रेरणा से एक वर्षतक प्रतिदिन त्रिकाल इसका जप किया। तदनन्तर त्रिशूलधारी की कृपा से उन्होंने उनका शरीरार्ध प्राप्त किया। शतरुद्रि के तीन बार पाठ करने से जो फल मनुष्य को होता है, वह फल उसे इसके एक बार के पाठ करने से प्राप्त हो जाता है। बेलपत्र अथवा फूल और तुलसीदल से या तिल तथा अक्षत से जो महादेवजी का यजन करते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। भगवान् शंकरके इन शतनामों में से कोई भी एक नाम मोक्ष देनेवाला है, अतः शतनाम का महत्त्व(फल) वर्णनातीत है।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'शिवोपासनांक' तथा वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'अनुष्ठानप्रकाशः' पर आधारित है। यजुर्वेद के मन्त्रों के लिये 'नाग' प्रकाशन की यजुर्वेदसंहिता का प्रयोग किया गया है।)

❀❀❀❀❀❀

बुढ़ापे से आक्रान्त होने पर मुनष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इनमें से किसी का भी साधन नहीं कर सकता; इसलिये युवावस्था में ही धर्म का आचरण कर लेना चाहिये।

न धर्ममर्थंकामं च मोक्षं च जरया पुनः।
शक्तः साधयितुं तस्माद् युवा धर्मं समाचरेत्।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 66/118)